(अनुताप)

(रूपमाला छंद)

मात्र एक प्रदीपयुत था हर्म्य[1] का वह कक्ष ।
सूक्ष्मजीवनज्योतिगर्भित जीव का ज्यों वक्ष ।
कर रहा लघु दीप संतत तिमिर से संघर्ष ।
रोकने जैसे चला वह असत का उत्कर्ष ॥ 1॥

लग रहा था आज ईषत[2] अनिल भी प्रतिकूल ।
अर्चि[3] हिलती थी कभी तो दीप की आमूल ।
प्रमदवन से अशुभ स्वर में मुखर धूर्त उलूक ।
शून्यता को भंग करती गूंजती थी हूक ॥2॥

सो रही रतिश्रांत रति सी रमणि वह रमणीय ।
अलक छूते थे अरूणिमायुक्त मुख कमनीय ।
वक्ष पर था हार हीरज अनुहरित[4] आरोह ।
तरूणता जिसकी नहीं है जानती अवरोह[5] ॥3॥

पृथक आसन कर विनत शिर प्रतीकात्मज[6] खिन्न ।
गहन चिंता मग्न बैठे ज्यों जगत से भिन्न ।
चक्रवर्ती हूं मृषा मम मानसिक दुष्चक्र ।
निरंतर करते व्यथित, है समय की गति वक्र ॥4॥

दूत सा बनकर चला वंचक विचित्र समीर ।
विवश सा खिंचता चला उत्सुक अतीव अधीर ।
मात्र योजन गंधता ने यश प्रसृत आसिंधु[7] ।
किया अवशोषित अगस्त्या[8] शक्ति से ज्यों बिंदु ॥5॥

गया था मृगयार्थ मैं ही बन गया मृगदीन ।
सिंह परिभव कारिणी देखो हुई लघुमीन ।
परिमलान्वेषी[9] भ्रमर सा कुसुमदल सुनिरूद्ध ।
हो गया आचार था वह राजधर्म विरूद्ध ॥6॥

1. राजभवन	4. अनुकरण करने वाला	7. समुद्र पर्यन्त
2. कुछ	5. ढलान	8. अगस्त ऋषि की
3. ज्योति	6. शान्तनु	9. सुगन्ध को खोजने वाला

जो रहा अन्वय[1] अनाविल[2] पुरूप्रवर्तित[3] भव्य ।
उसी में उपजा विवेकापेत[4] यह कौरव्य[5] ।
कविसुता[6] गाधेयपुत्री[7] चरित जिनका गेय ।
रहीं हैं महिषी यहां पर सुकुल का यह श्रेय ॥7॥

दासकन्याकामनातुर उसी कुल का अंक ।
मैं बना रतिपति[8] सुप्रेरित हंत! हो अपषंक[9] ।
प्रौढ़ता वपु की न मति तक पा सकी विस्तार ।
हो गई सुविवेक की उद्दामता से हार ॥8॥

जो कराती थी तरी[10] से पथिक जन को पार ।
निमज्जित तरूणी लगी करने मुझे हर बार ।
रूप रस का क्षीर निधि थी या कि वारूणि अब्धि[11] ।
नहीं होती थी तृषा को तृप्ति की उपलब्धि ॥9॥

अब न आवश्यक भवन में थे कुसुम या गंध ।
यहां परिमल ही सविग्रह[12] रूप का मकरंद ।
नहीं वारूणि, वाद्य भी थे अनावश्यक भार ।
हास ही संगीत मृदु था बाहु ही शुभ हार ॥10॥

हस्तिपुर में दिशा जीवन की हुई विपरीत ।
भोगरत थी प्रौढ़ता तारूण्य कामातीत ।
हो रहा पुरूवृत्त मानो पुन: था अभिनीत ।
दास नव्ययययाति[13] कर था काम अति अविनीत ॥11॥

रजो गुण की दुंदुभि बजती रही पुर मध्य ।
म्लानमुख था सत्व बैठा उपेक्षित अनवद्य[14] ।
गुरू प्रशासन भार वाही बना शुभ तारूण्य ।
घट रहे क्रमश: उधर कौरव्य के थे पुण्य ॥12॥

1. वंश	6. देवयानी	11. समुद्र
2. निर्मल	7. शकुन्तला	12. मूर्तिमान
3. पुरू से चलाया गया	8. कामदेव	13. नया ययाति बनानेवाला
4. विवेकहीन	9. बिना शंका के	14. अनिंद्य
5. कुरूवंशी	10. नाव	

अनगिनत मधुमय प्रजागर[1] रूप सागर बीच ।
किये हैं अनुभूत हमने लोचनों को मीच ।
वासना की उर्मियां फिर-फिर उठीं उत्ताल ।
अलक्षित[2] गति ही सुचिर तक रहा मुझको काल ॥13॥

आज्य[3] आहुति वर्धिता वह अग्नि सी प्रतिभात ।
गंधवह[4] उद्‌बुद्ध सा होता रहा प्रतिरात ।
तीव्र वह उन्माद जनता अंत में कुछ खेद ।
क्लांति लाती शांति सी कुछ और वपु पर स्वेद ॥14॥

प्रथम थी यदि सुधा की निष्यंदिनी[5] अभिराम ।
मदिरता उद्दामधारा अपर है अविराम ।
एक थी यदि सोम अपरा वारूणी[6] अति हृद्‌य[7] ।
एक आभाषीत अपरा रम्यता अनवद्‌य ॥15॥

बहा देती एक करती अंततः उत्तीर्ण ।
अपर करती निमज्जित रस सिंधु में विस्तीर्ण ।
एक अरूणिम उषा सी सत्कांति उज्जवल हास्य ।
अपर है चल चेतना का रूचिर चंचल लास्य ॥16॥

एक वरटा[8] मानिनी है अपर चपला मीन ।
एक उर्मि विलोल अपरा मदिर यौवन पीन[9] ।
पूर्व प्रातः कांति सी है अन्य कौतुक भ्रांति ।
एक शीत समीर गति सी अपर परिमल क्रांति ॥17॥

शिशिर दिन सी प्रथम देती स्फूर्ति बल आह्‌लाद ।
तारकित नभयुत विभावरि[10] अपर हृत अवसाद ।
प्रथम का प्रागल्भ्य इतरा[11] का निमंत्रण मौन ।
नहीं है अवधार्य[12] इनमें श्रेष्ठतर है कौन ॥18॥

1. जागरण	7. सुखकर
2. दृष्टि में न आने वाला	8. हंसिनी
3. कृत	9. पुष्ट
4. पवन	10. रात्रि
5. नदी	11. दूसरी
6. मदिरा	12. जानने योग्य

यदपि थी अब तक प्रियावपुजात सुरभि अमंद ।
अब नहीं दुर्वार लगता पंचशर[1] आस्कंद[2] ।
काम की निस्सारता का हुआ जब तक भान ।
वयकुसुम तब तक बहुत कुछ हो चुका था म्लान[3] ॥19॥

साथ चिर देवापगा[4] का भी न मन को शुद्ध ।
कर सका हतभाग्य यह चलता रहा अनिरूद्ध ।
विगत है जो काल संभव नहीं प्रतिसंहार[5] ।
खो चुका हूं नीति के उपदेष का अधिकार ॥20॥

नहीं वृत्त ययाति का भी कर सका अवबोध ।
कामना जीती अश्रुत धी[6] के रहे अनुरोध ।
हुआ पातित अगिर[7] से धृत आज भी वह दोष ।
पराजित सम आज केन्द्रित आत्म पर मम रोष ॥21॥

किंतु पुरूसम पुत्र को मैं पुन: यौवन दान ।
दे नहीं सकता प्रतिश्रुत है तनय सुमहान ।
हुआ अस्ताचलोन्मुख रवि नवोदय का रोध ।
ले रहा क्यों जनक ही प्रियपुत्र से प्रतिशोध ॥22॥

गंधगुण आकृष्ट पार्थिव[8] हुआ पार्थिव सत्य ।
सत्वहारक भोगधारा का सुचिर सातत्य[9] ।
जब विभाषित हुआ इन्द्रियजन्यसुख वैतथ्य[10] ।
दिवस की गोधूलिता[11] ही बन चुकी थी तथ्य ॥23।।

क्या मुझे था उचित इस वय में विचित्र विहार ।
जब प्रजा नंदित रही युवराज ओर निहार ।
किया जनपद भाग्य का ही क्रूर हो अपहार ।
अचेतन वह सत्व जिस पर मार[12] का अधिकार ॥24॥

स्वप्न में लघु द्वीप देखा महानद के मध्य ।
सघन वन से जो सुषोभित विहग युत अनवद्य ।
केषरी उपविष्ट एकाकी युवा अवसन्न ।
देखता तक जो नहीं मृग वृंद भी आसन्न ॥25॥

1. कामदेव	5. लौटाना	9. निरंन्तरता
2. आक्रमण	6. बुद्धि	10. असत्यता
3. मुरझाया हुआ	7. स्वर्ग	11. अवसान काल
4. गंगा	8. जड़, पृथ्वी का	12. कामदेव

त्याग स्वेच्छा से पिता सुख हेतु सब अधिकार ।
किया है मुझसे जनक पर भी अमित उपकार ।
चित्त जाता देवव्रत की ओर बारंबार ।
दिया सुरसरि ने मुझे जो दिव्यतम उपहार ॥26॥

पर न समझा मूल्य मेरा चित्त था सविकार ।
आज सीदित[1] हूं गया सब कुछ जगत में हार ।
शांत शांतनु चित्त अब आवेग का आगार ।
नहीं पाता दुख उदधि में स्वल्प भी आधार ॥27॥

चक्रवर्ती से बना में विनत याचक दीन ।
विषमशरशरविद्ध[2] मानस हो गया श्रीहीन ।
धातु दा ही रही च्युत था स्थान से बस व्यक्ति ।
मिटी प्रथमा प्राप्त थी अब सम्प्रदान विभक्ति ॥28॥

छीन कर सत्पात्र का विधिमान्य शुभ अधिकार ।
नय तिरस्कृत है अनय विजयी हुआ सविकार ।
दान दें मुझको क्षमा का हस्ति कुरू पुरू मान्य ।
प्रार्थना यह किल्विषी[3] करता अधम अवदान्य[4] ॥29॥

खो दिया जिस पुत्र के हित सुखद गंगा साथ ।
देखने जिसका वरानन विकल था दिन-रात ।
साथ जिसके समुद बीते चार ही बस वर्ष ।
जो रहा हो सर्वदा पितु भक्ति का आदर्श ॥30॥

छीन कर अधिकार उसका अपहरित कर स्वत्व ।
खो दिया मैंने सकल निज जनकता का तत्व ।
बन गया गजपुर[5] विलासायुध अतनु[6] का सद्म[7] ।
अरति[8] आयी है यहां रति वेष धर कर छद्म ॥31॥

मैं अपर अजसुत[9] परंतु न त्याग पाया प्राण ।
अकृत सुकृत न प्राप्त करता वेदना से त्राण ।
सह चुका शिशु घात भी त्यागी न वामा हाय ।
पुन: श्यामा[10] हेतु कृतबलि पुत्रहितसमुदाय ॥32॥

1. विषादित, दुखी	4. अकुषल वच्चा	7. घर, निवास
2. कामदेव पीडित	5. हस्तिनापुर	8. पीड़ा ,वेदना
3. पापी	6. कामदेव	9. दशरथ
10. सुन्दरी का एक प्रकार		

हैं अनुत्तम[1] ज्ञात जिनको भोग है निस्सार ।
बिना भोगे जानते वे बुद्धि से रिपु मार ।
मध्यमस्थ मनुष्य वे जो भोग कर बहु भोग ।
अंत में हैं जान जाते दीर्घ यह भव रोग ॥33॥

मूढ़ हैं वे मनुज जिनकी लालसा तनुजात ।
विवर्धित होती चली जाती यहां दिन-रात ।
मनोभव[2] भव[3] सिंधु में उनको डुबाता घोर ।
देख पाते वे न आयत[4] शर्वरी [5] का छोर ॥34॥

हुए हैं दो पुत्र पर मुझको नहीं विश्वास ।
पूर्ण होगी कुरू धरा के उन्नयन की आस ।
एक उद्धतमूर्ति है तो दूसरा सुकुमार ।
नहीं दिखते हैं वहन क्षम राज्य का गुरू भार ॥35॥

त्याग किया महनीय नहीं पर
था उपयुक्त महाव्रत लेना ।
मात्र पिता सुख हेतु नहीं सुत
धर्म विचार यहॉ तज देना ।
लज्जित हूं लगती मुझको अब
जीवन नाव असंभव खेना ।
घेर खडी अनिषं मुझको
लगती कुसुमायुध की अघसेना[6] ॥36॥

पौरव[7] हो तुम सत्य दिया निज
यौवन दान अपात्र पिता को
जो करके नृप मान तिरस्कृत
चाह रहा बस दाश सुता को
क्या अब उत्तर देय रहा सुर
की अपगा अति प्राण हिता को
भूल गया सब धर्म अधर्म
सकाम हुआ यह जन्तु चिता को ॥37॥

1- सर्वोत्तम	5. रात्रि
2- कामदेव	6. पाप सेना
3- संसार, सागर	7. पुरू के वंषज
4- दीर्घ, लम्बी	

मॉग अस्वीकृत थी मुझको फिर
क्यों तुमने यह दान किया है ।
कामजयी न पिता मम हैं तुमने
मन में यह मान लिया है ।
वीरवृती तुमसा न सही पर
धर्म विरूद्ध न काम किया है ।
कारितहानितनूज[1] बना वह
जो बस लोक हितार्थ जिया है ॥38॥

पाकर धन्य हुआ तुझ सा सुत
किन्तु अधन्य हुआ कुल मेरा ।
आयति[2] है दिखती मुझको यह
धाम बना दुख का चिर डेरा ।
मॉग रहा तुझसे वरदान यही
जब तोड़ चलूं तनु घेरा ।
हो जब भी व्यसनातुर[3] देश
बने अभिरक्षक विक्रम तेरा ॥39॥

हूं परम संतुष्ट तुमसे दे रहा वरदान ।
रहेगी सुत तव वषंवद[4] मृत्यु हो गतमान ।
सदा अपराजेय रहकर अर्कसम धर धाम ।
अतुल यश पाओ मनस्वी धर्मविद निष्काम ॥40॥

एक दिन फिर स्वप्न में आयी त्रिपथगा धीर ।
कहा सब अवसाद छोड़ो दीनता भी वीर ।
तुम निरागस[5] हो तनयव्रत के न कारण भूप ।
देवव्रत वसु है धरा पर शाप वश नर रूप ॥41॥

नहीं होनी थी धरा पर वसुज[6] संतति अन्य ।
इसलिए प्रतिश्रुत[7] हुआ सुत जनक को कर धन्य ।
जाग जनप्रिय हो गये प्रकृतिस्थ विगतविषाद ।
हुआ अपगतभारमन संतोष का आसाद[8] ॥42॥

1. पुत्र की हानि करनेवाला	5. निष्पाप
2. भविष्य	6. वसु से उत्पन्न
3. विपदाग्रस्त	7. प्रतिज्ञा करनेवाला
4. वशवर्ती दासी	8. प्राप्ति